Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 6, May-2019, ISSN 2230-7540

बाढ़ए बाँध और पुनर्वास की समस्या

Dr. Ajay Kumar Jha*

Village - Dabhari, Post – Bhoud, District - Madhubani

सार – *पुनर्वास की समस्या एक जटिल समस्या थी, धीरे-धीरे पुनर्वास योजना का स्वरूप कुछ और स्पष्ट हुआ। विधायक रघुनाथ झा द्वारा बागमती परियोजना में पुनर्वास की व्यवस्था पर किए गए एक अल्पकालिक प्रश्न के उत्तर में सरकार की तरफ से मुहम्मद हुसैन आजाद 1976 में बताया, इसके लिए स्केल यह है कि हर फैमली को जिसको थैन्येड रूफ हैं, उसको 300 रूपये, जिसको टाइल्ड रूफ है, उसको 500 रूपये तथा जिसको पक्का मकान है उसको 4 रूपये वर्ग फीट के हिसाब से दिये गए हैं।" इसके साथ ही आजाद ने सदन को यह भी बताया कि अब तक तटबंधों से प्रभावित 73 गाँवों में से 18 गाँवों को इस तरह का ढुलाई-शुल्क दिया जा चुका है और 8 गाँवों के लोग तो पुनर्वास स्थलों में चले गए है।"[1]*

----------X----------

रघुनाथ झा सरकार से यह जरूर जानना चाहते थे कि बांकी गाँवों को सरकार ने किसके भरोसे छोड़ रखा हैं? सरकार के साथ समस्या यह थी कि वह केवल परिवार के मुखिया को ही ढुलाई शुल्क की रकम देना चाहती थी, जबकि परिवार के सदस्य का कहना था कि उनमें आपस में बंटवारा हो गया हैं और वह एक छत के नीचे रहते हुए भी अलग-अलग थे। एक दूसरी समस्या भी थी। बहुत से लोग यह ढुलाई शुल्क लेकर भी तटबंधों के अन्दर अपने पुराने गांव घर में ही रह रहे थे, वह पुनर्वास में नही गए क्योंकि उनकी जमीन-जायदाद और कृषि भूमि तटबंध के अन्दर ही स्थित थी। सरकार की कोशिश थी कि जो लोग कम्पेनसेशन ले चुके हैं वह पुनर्वास स्थल में चले जायें। सरकार की तरफ से डा0 जगन्नाथ मिश्र का कहना था कि सरकार यथाशीघ्र बांकी गांवों को तटबंधों के बाहर बसाने का काम करेगी। उन्होंने सदन में यह भी आश्वासन दिया कि तब तक बने तटबंधों में पाँच स्थानों पर गैप रखे हुए हैं, जिनकी वजह से तटबंधों के अन्दर नदी के पानी का लेवेल बेजा तरीके से नहीं बढ़ने पाएगा और वहाँ के रहने वाले लोगों को बहुत ज्यादा परेशानी नहीं होने दी जाएगी। इस पर रघुनाथ झा ने चुटकी ली थी कि यही गैप तो पटना शहर को बचाने वाले तटबंधों में भी रखे गए थे जिनकी वजह से 1975 के अगस्त महीने में शहर पूरी तरह से डूबने-डूबने की हालत में पहुँच गया था।[2]

इधर पुनर्वास का मसला उठा और दूसरी तरफ जमीन के अधिग्रहण और विस्थापितों के बीच उसके बंटवारे को लेकर भ्रष्टाचार का बाजार गर्म हुआ। इसकी वजह साफ थी। जिसके जमीन का अधिकग्रहण पुनर्वास के लिए होना था, उसकी चिन्ता स्वाभाविक थी कि अब्बल तो उसकी जमीन का अधिग्रहण हो ही नहीं या फिर बहुत कम हो और अगर इस जमीन का उचित मूल्य मिले और इसके लिए वह हर संभव कोशिश कर रहा था। जिसको पुनर्वास की जमीन की जरूरत थी, और वह हर विस्थापित को थी, वह इस चिंता में कि कहीं पहले दौर में वह छूट न जाय और बाद में परेशानी हो, वह भी अधिकारियों को खुश रखने की कोशिश में कोई खतरा मोल नहीं लेना चाहता था। ढुलाई शुल्क में तो भुगतान होने वाला था। अतः वहां तो किसी तरह की रोक की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। पुनर्वास से संबंधित हर अधिकारी के दोनों हाथ लड्डू थे। पैसा हवा में उड़ता था और उसे अधिकारियों द्वारा हाथ बढ़ा कर पकड़ लेने भर की देर थी।[3]

महानन्दा तटबंधों के बीच की दूरी लगभग दो किलोमीटर के आसपास है। स्वाभाविक है कि जब तटबंधों की शक्ल में जमीन पर लकीरें खींची जायेंगी तब उनके जद में गांव आयेंगे और लोग फंसेंगे। बाढ़ के जिस पानी को कभी पूरा इलाका झेलता था वह अब तटबंधों के बीच फँसे लोगों की नियति बनेगा। ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि तटबंधों के बीच के लोगों का पुनर्वास किया जाय और उनके जीविका के स्रोत, खेती की जमीन को आबाद रखा जाय। बाढ़ सुरक्षा के नाम पर उत्तर बिहार में आजादी के बाद पहली पुनर्वास प्रक्रिया की नजर कोसी परियोजना में मिलती है। इस परियोजना में दरभंगा, मधुबनी तथा सहरसा जिलों के तीन सौ चार गाँव तटबंधों के बीच आ गये थे। कोसी के विस्थापन के संदर्भ में केन्द्रीय जल सिंचाई तथा नौपरिवहन आयोग के

www.ignited.in

तत्कालीन अध्यक्ष, राय बहादूर अयोध्या नाथ खोसला ने 8 दिसम्बर 1947 को कहा था कि, ''यह वांछनीय है कि कुरबानियों और फायदों को जनता पर समान रूप से बाँटा जाय। जहाँ पुनर्वास के लिए नई जमीन उपलब्ध नहीं हैं वहाँ प्रस्तावित सिंचित क्षेत्रों के लाभांवित होनेवाले लोगों से अपनी जमीन का कुछ अंश उन लोगों के अन्दर कुल प्लावित और कुल सिंचित भूमि के अनुपात में देने को कहा जाय, जिनकी जमीन बांध के चले पानी में डूबने वाली है। इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाय कि कोई भी जोत अलाभकारी जोत न होने पाये। मुआबजे और विस्थापन की समस्या को सहानुभूति और दूरदृष्टि से सुलझाना होगा। जहाँ तक संभव हो सके जमीन का मुआवजा जमीन से दिया जाय।'' यह बात खोसला साहब ने तब कही थी जब प्रस्ताव बाराह क्षेत्रा में कोसी पर बांध बनाने का था। परंतु जब 1953 में कोसी योजना का वर्तमान स्वरूप उभरा तब तक यह स्पष्ट हो चुका था कि जमीन का मुआवजा जमीन से नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उतनी जमीन का अधिग्रहण करना बहुत मुश्किल था। अतः रिहाइश के लिए जमीन इस तरह दी गई, जिससे लोग अपने पुश्तैनी मकान और जमीन के अधिक नजदीक रह सकें। रिहायशी जमीन के अलावा घर बनाने के लिए अनुदान दिया गया और नई बस्तियों में सड़क, स्कूल और पीने का पानी की व्यवस्था के लिए प्रावधान किया गया।[4]

यह एक अलग बात है कि अधिकांश नए गांव में कालान्तर में जल जमाव हो गया और लोग अपनी पैतृक संपति का मोह छोड़ नहीं पाये और ज्यादातर क्षेत्रा अपने गांव को वापस लौट गए। फिर भी शेरनी क्षेत्रा के लोगों ने अपनी मांगों को जिन्दा रखा और उसके उत्थान के लिए, कागज पर ही सही, सरकार ने कोसी पीड़ित विकास प्राधिकार की स्थापना 1987 में की।[5]

महानन्दा तटबंधों के कारण विस्थापित होनेवाले लोग इतने खुशनसीब नहीं थे। पुनर्वास हुआ जरूर मगर काफी बेमन से। इन विस्थापित होनेवाले परिवारों की कोई श्रृंखलाबद्ध जानकारी नहीं मिलती और न ही संभवतः इस आशय का कोई आलेख ही कभी तैयार किया गया। जो कुछ जानकारी उपलब्ध है उसके आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि 1965-69 के दौरान जब योजना का प्रारूप तैयार किया जा रहा था तब सरकार द्वारा संभावित रूप से पुनर्वासित होनेवाले परिवारों का एक नमूना सर्वेक्षण करवाया गया था जिसके आधार पर कालान्तर में पुनर्वास योजना का मसविदा तैयार होना था। योजना के प्रारंभ में महानन्दा तटबंधों की लम्बाई 208 किलोमीटर प्रस्तावित थी। विस्थापित होने वाले परिवारों की संख्या का अंदाज लगाने के लिए महानन्दा की बरसोई शाखा की बागडोल के दक्षिण की प्रस्तावित तटबंधों की लम्बाई चुनी गई जिसके 1.2 किलोमीटर अंदर पड़ने वाले गांव में नमूने के तौर पर सर्वेक्षण हुआ। प्रस्तावित तटबंध की इस लम्बाई में 7 गांव अवस्थित थे, जिनके नाम थे, संसारपुर-55 परिवार, सहजना-43 परिवार, सहजना कदम गच्छी-24 परिवार, तीयर पाड़ा-20 परिवार, बोरला अराजी-92 परिवार, बामा गांव-49 परिवार तथा कटहर टोला-10 परिवार। इस प्रकार कुल विस्थापित होने वाले परिवारों की संख्या 293 थी। इसके बाद का काम काफी आसान था। प्राइमरी स्कूल में अंकगणित से जो ऐकिक नियम का सिद्धान्त पढ़ाया जाता है, ठीक उसी के आधार पर विस्थापित होनेवाले परिवारों की गणना की गई। तटबंध की 1.2 किलोमीटर की दूरी पर 293 परिवारों के होने का मतलब था तटबंधों की प्रति किलोमीटर लम्बाई पर 26.16 परिवारों का निवास होना। इस प्रकार 208 किलोमीटर तटबंध की लम्बाई पर 208-26.16 = 5460 परिवारों को रिहाइश तय पाई गयी।[6] परिवारों की इसी योजना को मुआवजा तथा पुनर्वास का आधार बनाकर तथा यह प्रस्ताव किया गया कि-

1. 4,940 रूपये प्रति हेक्टेयर की दर से प्रति परिवार दस डिस्मिल 404 वर्गमीटर जमीन का स्थाई रूप से आवंटन किया जाय। 5460 परिवारों के लिए 200रूपये प्रति परिवार की दर से लागत खर्च - 10,92,000रू0 दिया जाय।

2. प्रस्तावित तटबंध पर पड़नेवाले घरों का मुआवजा 375रू0 प्रति किमी0 तटबंध की लम्बाई की दर से 208 किमी0 की दूरी पर, लागत-78,000/- रू0।

3. 1596.36 हेक्टेयर पर खड़ी फसल का मुआवजा 494रू0 प्रति हेक्टेयर की दर से लागत-7,28,600/- रू0।

4. 5460 परिवारों का पुनर्वास लागत मूल्यय 250/- रूपये प्रति की दर से लागत 13,65,000/-

कुल योग-33,23, 600/- रूपये मात्रा

इसके साथ ही 688.26 हेक्टेयर अतिरिक्त जमीन अधिग्रहण करने का प्रस्ताव था। जिधर से होकर तटबंध को गुजरना था, 4,940 रू0 प्रति हेक्टेयर की दर से यह लागत चैंतीस लाख रूपये आनेवाली थी। तटबंधों के बीच फँसने वाले परिवारों के लिए भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया 1975 में शुरू की गई और 1978 तक अधिग्रहण लगभग पूरा कर लिया गया।[7]

यह पूरा पुनर्वास प्रस्ताव, अगर इसे पुनर्वास प्रस्ताव कहा जा सके तब, निश्चित रूप से लोगों को फुसलाने का ही काम कर

www.ignited.in

सकता है। एक तो विस्थापित होनेवाले गांवों और परिवारों की पूरी पहचान ही नहीं की गई। क्योंकि यह तो ऐकिक नियम पर आधारित गणित से कर दिया गया था। दूसरे अपना घर उजाड़ कर दूसरे जगह घर बनाने का मुजावजा पहले से ही औसतन 250 रू0 तय किया जा चुका था।

यहाँ यह याद दिलाना सामायिक होगा कि 1953 में कोसी योजना की स्वीकृति और जनवरी 1955 में उस पर काम शुरू होने के एक वर्ष के अन्दर कोसी तटबंधों के बीच फंसने वाले लोगों को अपने समुचित पुनर्वास के लिए आन्दोलन का रास्ता अपनाना पड़ा था, जिसका नेतृत्व सहरसा जिला परिषद के तत्कालीन सभापति भूसन गुप्ता ने किया था। यह भी देखने लायक है कि योजना शुरू होने से पहले सारे सम्बद्ध पक्षों ने चुप्पी साध रखी थी कि पुनर्वास की बात उठायी गयी तो उस पर आनेवाला खर्च इतना अधिक होगा कि योजना पर हीं सवालिया निशान लग जाएगा। इसलिए कोसी परियोजना के मामले में पुनर्वास की बात 1956 में उठी जबकि योजना पर काम शुरू हो गया था।

बाद में भले ही कोसी परियोजना में यह पुनर्वास के प्रावधानों को लागू करने की नियत न रही हो पर कम से कम पुनर्वास संबंधी बयान तो जरूर जारी किए गए, जिसके अनुसार पुनर्वास के लिए निम्न कार्यकर्मो का प्रस्ताव किया गया था-[8]

1. तटबंधों के बीच फँसने वाले परिवारों को तटबंधों के बाहर रिहायशी जमीन के बराबर जमीन इस प्रकार दी जाय जिससे लोग तटबंधों के अंदर अपनी खेती की जमीन के ज्यादा से ज्यादा नजदीक रह सकें।

2. सामुहिक कार्यों, जैसे सड़क, चैपाल, गौशाला, खेत के मैदान आदि के लिए कुल रिहायशी जमीन की 40 प्रतिशत जमीन के अर्जन का प्रस्ताव किया गया।

3. तटबंध के अन्दर पहले घर की लागत के अनुसार पूर्ण गृह निर्माण का अनुदान विस्थापितों को दिये जाने की बात कही गई।

4. पुनर्वासित स्थलों पर पीने के पानी की सुविधा देने का प्रस्ताव किया गया।

5. पुनर्वास बस्तियों से खेती की जमीन तक यातायात के लिए नावों आदि की सुविधा की व्यवस्था प्रस्तावित हुई।

6. जब तक कि स्थायी पुनर्वास की व्यवस्था नहीं हो जाती तब तक तटबंधों के अंदर बसने वाले लोगों के लिए वर्षा-बाढ़ के दौरान, अस्थायी आवास की व्यवस्था का भी प्रावधान किया गया।

इन प्रावधानों में से क्या-क्या किया जा सका और क्या नहीं यह एक विवाद का विषय है। पर दुःख इस बात का है कि महानन्दा परियोजना में यह सब बातें कही तक नहीं गईं। योजना बनाने वालें ने तो खैर खाना पूरी कर दी पर जिन लोगों की कीमत पर यह तटबंध बने उनके हाथ उपेक्षा के अलावा कुछ नहीं लगा।

उपलब्ध सूचना के अनुसार कुल मिलाकर महानन्दा बाढ़ नियंत्राण परियोजना में रिहाइश के लिए 18.69 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण करने के लिए सूचना जारी हुई और 173.72 हेक्टेयर जमीन का अधिग्रहण करके इस दरम्यान उन लोगों में बांटा गया जो कि सुरक्षित स्थानों पर जाने के लिए तैयार थे। कार्यपालक अभियंता, महानन्दा बाढ़ नियंत्राण प्रमण्डल, कटिहार की 2.5.1980 की टिप्पणीवाद में यह उल्लेख है कि आजमनगर प्रखण्ड के गोलिया नन्देसरी गांव के 156 परिवारों को बसाने के लिए लालगंज, तेघरा तथा इंगलिसिया गावों में जमीन का अधिग्रहण नौ लाख बयासी हजार रू0 की लागत पर किया गया।[9]

योजना सूत्रों के अनुसार यह दावा किया जाता है कि मूल प्रस्ताव के प्रावधानों के अनुसार रिहायशी मकान तथा जमीन और खड़ी फसल के मुआवजे के सारे काम पूरे कर लिये गये हैं और पुनर्वास संबंधी फाइलें 1985 के बाद से सक्रिय नहीं हैं।

विस्थापन, पुनर्वास और मुआवजे के मसले पर विस्थापितों की राय सरकारी राय से मेल नहीं खाती। मिसाल के तौर पर अमदाबाद प्रखण्ड के जमरा गांव में 1975 में 5.38 हेक्टेयर जमीन का अधिग्रहण विस्थापितों के पुनर्वास के लिए किया गया था। जिन परिवारों को इस जमीन पर पुनर्वासित किया जाना था उन्हें यह जगह पसंद नहीं थी और उन्होंने दूसरी जगह पुनर्वास मांगा जो कि दिया नहीं गया और ये लोग तटबंध के अंदर रहने को मजबूर हुए। जमरा गांव के एक किसान ने जिसकी भूमि का अधिग्रहण हुआ था, 25 नवम्बर 1985 को सरकार को आवेदन दिया कि यदि उसकी जमीन पर लोग बसने के लिए नहीं आते हैं तो उसकी जमीन का मालिकाना उसे लौटा दिया जाय और यह किसान सरकार से लिया हुआ पैसा वापस कर देगा, क्योंकि इस जमीन का कोई इस्तेमाल नहीं हो रहा था। बताते हैं कि सरकार ने इस जमीन का मालिकाना पहली फरवरी 1988 को आवेदक को लौटा दिया है। जमरा गांव की जो जमीन पुनर्वास के लिए

www.ignited.in

अधिग्रहित की गई थी उस पर अमदाबाद प्रखण्ड के इंगलिश डकरो पंचायत के बेलगच्छी गांव के लोगों को बसना था। इस गांव के दो टोलों में रहनेवाले लगभग 250 परिवार पुनर्वासित होते। परंतु तटबंधों के बीच बसे बेलगच्छी गांव से एक भी परिवार पुनर्वास वाली जमीन पर नहीं गया। तटबंधों के अंदर फंसे, जियामारी गांव के लोगों को भी जमरा में पुनर्वास के लिए जमीन मिली थी। यह लोग बसने के लिए तटबंध पर आ गये पर पुनर्वास वाली जमीन पर नहीं गये। दूसरा कारण था कि पुनर्वास की यह जमीन नीची थी जिसमें तटबंध बनने के बाद ही से ढ़ाई मीटर तक पानी लग जाता था। एक साधारण वर्षा और बाढ़ वाले वर्ष में पानी का यह जमाव धीरे-धीरे होता था मगर नदी का तटबंध यदि उपर कहीं टूट गया तब दो तीन घंटे के अदर ही पानी खड़ा हो जाता था। ऐसी जगह कौन अपना आशियाना बनायेगा। इस पानी से बचाव का एक ही रास्ता है कि जमरा के दक्षिण में खट्टी या बोचामन गांवों में नदी का तटबंध काटा जाय और भले ही बेलगच्छी के लोग पुनर्वास वाली जमीन पर बसने के लिए नहीं आये मगर जमरा में जल जमाव इतना गंभीर हो जाता है कि लोगों को तटबंध काटना ही पड़ता है। में 1987 और 1991 में ऐसी घटनायें हुई है।[10]

इसी तरह रढ़वा प्रखण्ड के नौ ग्राम पंचायतें की जमीन बेलगच्छी झौआ तटबंधों के अन्दर पड़ती है, जिसके बाशिन्दों का तटबंध के बाहर वैकल्पिक रिहायशी जमीन का प्रावधान किया गया था । विभिन्न कारणों से इन ग्राम पंचायतों का कोई भी परिवार नई जमीन पर बसने नहीं गया और सभी के सभी तटबंध के अन्दर रहते हैं।[11]

सिरतिया से बहुत नजदीक है तटबंध के अन्दर बसा हुआ गांव सोलकन्धा जो कि असम या त्रिपुरा गांव से ज्यादा मिलता जुलता है। इस गांव में मकान अपेक्षाकृत बड़े और ऊँची जगहों पर बने हुये है। बांसों के बड़े झुरमुट, अन्य बड़े पेड़, स्वास्थ पशु, छोटे-छोटे कई तालाब और उनमें तैरती हुई बत्तखें, बाँस की बनी हुई घरों की बाड़ पर सूखते हुए साफ सुथरे कपड़े और चारों ओर फैले गेहूँ के खेत, यहाँ का कुछ भी इस क्षेत्रा के दूसरे, गांवों से मेल नहीं खाता। यहाँ तक कि लोगों की शक्लें भी भिन्न हैं।[12] पंचानन सिंह, 55 वर्ष, बताते है कि पशुराम की क्षत्रियों से लड़ाई के समय हम लोग नेपाल से भागकर यहाँ के होकर रह गये।

महानन्दा पर जब तटबंध बनने की बात आई तो इन लोगों का तटबंध के बाहर सौलकन्धा गांव में ही जमीन दी गई। पर यदि लोग नई जमीन पर गये नहीं तो इसके लिए उनके अपने कारण थे। 65 वर्षीय के काई सिंह बताते है कि, ‘‘हम लोग शहरी लोग तो हैं नहीं, गांव में रहते हैं और खुली जमीन में रहने के आदी हैं। घर के लिए 200-250 वर्ग मीटर जमीन मिली थी वह नीची जमीन थी। जरा सा पानी बरसा और घुटने भर पानी लग गया। अभी जो बाहर रहते हैं वह तो पानी में ही रहते हैं। वहाँ तो धान सुखाने भर को भी जगह नहीं है। हमारे टोले के 60 परिवार होंगे जिसमें से 20 से ज्यादा बाहर नहीं गये होंगे। ज्यादातर लोग यही हैं और जो चला भी गया है वह भी खाली खाने -साने के लिए वहां जाता है, बाँकी पूरा समय इसी जगह रहता है। हमलोग बरसात में तटबंध पर चले जाते हैं। वहीं झोपड़ी बनती है। बरसात में तो क्या अन्दर और क्या बाहर, लगभग सभी लोग बांध पर रहते हैं।’’

पुनर्वास योजना के तहत जो लोग तटबंध के बाहर आ गये हैं उनके लिए जल जमाव मुख्य समस्या है, जिससे खरीफ की फसल का मारा जाना तो तय है और जहाँ नवम्बर मध्य तक पानी नही हटता वहां रब्बी भी नहीं होती। उम्मीद की एक किरण जूट और गरमा धान है, पर इन दोनों फसलों को कभी न कभी सिंचाई चाहिये जो कि सबको सुलभ नहीं है। कुछ लोग नदी नालों या तालाबों के पानी का प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु यह व्यवस्था पम्प के बिना कारगर नहीं होती। किराये पर पम्प लाने के लिए पैसा चाहिए और वह बहुत कम ही लोगों के पास होता है। नतीजा यह होता है कि बड़ी तादाद में कामगार लोग दिल्ली, पंजाब हरियाणा, असम या कोलकाता का रूख करते हैं, क्योंकि मेहनत मजदूरी के आलावा और कोई हुनर उनके साथ में है ही नहीं। स्थानीय स्तर पर ऐसे मजदूरों की माँग बहुत कम होती है, क्योंकि खेती तो चैपट हो चुकी है।

ऐसे में जब तटबंध टूटता है, जो कि अक्सर होता है, तो गाँव के गाँव साफ हो जाते है। जमीन पर बालू पड़ जाता है या गहरे गड्ढ़े बन जाते हैं, खेती की कतई कोई सम्भावना नहीं रह जाती है और तब महाजनों से बचे रहने का कमाल बिरले लोगों को ही हासिल होता है। रहने की व्यवस्था, भोजन, दवा-दारू का इन्तजाम तुरंत करना पड़ता है और इन समय मदद के लिए पास-पड़ोस, दोस्त-अहबाब, नाते-रिश्तेदारी, सरकार और स्वयंसेवी संस्थाएँ आगे आ जाती हैं और दो-चार-दस गाड़ी जैसे-तैसे खिंच जाती है।

संदर्भ

1. रघुनाथ झा, उपर्युक्त, पृ0 4
2. The Serchlight, Patna, 10 Dec, 1947
3. दिनेश कुमार मिश्र, बंदिनी महानंदा, पृ0 86

www.ignited.in

4. महानंदा बाढ़ नियंत्राण परियोजना कटिहार के सौजन्य से

5. Braj Nandan Azad, The Indian Nation, Patna, 1 July 1956.

6. Debesh Mukherjee, The Koshi Bihar District Gazetters, Saharsa, 1965 pp. 249.

7. जल संसाधन विभाग, बिहार सरकार, वार्षिक रिपोर्ट-1989-99, कार्यक्रम 1999-2000, पृ0-II

8. दिनेश कुमार मिश्र, बागमती की सद्गति, पृ0 90

9. दिनेश कुमार मिश्र, उपर्युक्त, पृ0 112

10. The Indian National, Patna, 1 July 1956

11. Debesh Mukherjee, op. cit., f-249

12. जल संसाधन विभाग, बिहार सरकार वार्षिक रिपोर्ट, 1989-99, कार्यक्रम 1999-2000 पृष्ठ-II

Corresponding Author

Dr. Ajay Kumar Jha*

Village - Dabhari, Post – Bhoud, District - Madhubani